जूँ के ज़रिए कपड़े का इतिहास?

शिक्षकों के साथ बातचीत

कालू राम शर्मा

संदर्भ के पिछले अंक में *मुनष्य के कपड़ों की कहानी, जूँ और आण्विक घड़ियों की ज़ुबानी* नामक लेख में जूँ के ज़रिए कपड़ों के इतिहास को समझा। यह संयोग है कि कुछ महीने पहले एक शाम इसी मसले पर खरगोन ज़िले के रायबिड़पुरा में शिक्षकों के साथ एक सत्र आयोजित किया गया। इस सत्र का ब्यौरा यहाँ प्रस्तुत है।

जूँ ने बताया कपड़े का इतिहास! बात कुछ अटपटी-सी लगती है। इसी विषय पर शिक्षकों के साथ चर्चा की गई। पश्चिमी निमाड़ के खरगोन ज़िले में रायबिड़पुरा एक कस्बा है जिसकी आबादी लगभग छह हज़ार के आसपास है। यहाँ अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की ओर से शिक्षकों के लिए टीचर लर्निंग सेंटर की स्थापना की गई है। शिक्षक नियमित रूप से सेंटर में एकत्र

होकर अपने पेशेवर विकास की तैयारी करते हैं। यहाँ नियमित रूप से शिक्षकों के साथ शाम को बैठकों का आयोजन होता है।

जब मैं एन.सी.ई.आर.टी. की विज्ञान विषय की पाठ्यपुस्तकों (छठी कक्षा में *तन्तु से वस्त्र तक*, कक्षा सातवीं में *रेशों से वस्त्र* और कक्षा आठवीं में *संश्लेषित रेशे और प्लास्टिक*) में वस्त्र से सम्बन्धित अध्यायों का अवलोकन कर रहा था तब मेरे दिमाग में एक सवाल ने जन्म लिया कि आखिर मानव ने कपड़े पहनना कब प्रारम्भ किए होंगे। ज़ाहिर है कि पाठ्यपुस्तक की अपनी सीमाएँ होती हैं। वे हर सवाल का जवाब नहीं दे सकतीं। अगर वस्त्रों की बात होगी तो उसके पहले-पहल इस्तेमाल को लेकर सवाल उठना लाज़मी ही है। वैसे भी विज्ञान शिक्षण में हम विज्ञान के इतिहास को प्रमुख रूप से शामिल करते हैं। हम विज्ञान शिक्षण के दौरान यह भी जानने की कोशिश करते हैं कि आखिर किसी चीज़ की खोज कैसे हुई होगी, पहली बार उसे कैसे खोजा गया होगा। यानी कि ऐतिहासिक वैधता विज्ञान शिक्षण का एक अहम पहलू है। एक बात और कि जब इस तरह के सवालों को आधार बनाकर विज्ञान किया जाता है तो यह समझने में मदद मिलती है कि वैज्ञानिक लोग किस तरह से सोचते हैं और काम करते हैं (जॉन ड्यूई)।

मैं कपड़ों के इतिहास के बारे में बातचीत करना चाह रहा था। मुझे *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पत्रिका *स्रोत* (डी. बालासुब्रमण्यम का लेख) व इंटरनेट इत्यादि से जो पता चला, वह काफी चौंकाने वाला था – कि जूँ ने कपड़ों के इतिहास को जानने में बड़ी भूमिका अदा की है। जूँ और कपड़ों का अन्तर्सम्बन्ध कैसे बिठाया होगा? आखिर जूँ का कपड़ों से क्या रिश्ता हो सकता है? यही बात रायबिड़पुरा के शिक्षकों के दिलोदिमाग में भी गूंज रही थी।

बहरहाल, चर्चा की शुरुआत में ही जूँ की गन्दगी में पनपने की बात आ टपकी। शिक्षकों से पूछा गया, “क्या उनके सिर में बचपन में जूँ पड़ी थी?” यह बताने में थोड़ी हिचकिचाहट तो थी मगर जल्द ही हम अपने-अपने अनुभव साझा करने लगे। बचपन में हममें से सभी को सिर में जूँ हुई थीं।

बचपन में मुझे वो दिन याद है जब माँ मेरे घने बालों में से जुओं को बीनते हुए डाँट पिलाती रहती थीं। आखिर मैं करता भी तो क्या! माँ यही कहती जातीं कि पता नहीं कहाँ से जुँओं को ले आता है। जब बेटी बड़ी हुई और स्कूल जाने लगी तो उसके घने बालों में से उसकी माँ द्वारा जुँओं को बीनना एक नियमित काम हुआ करता था।

ऐसे ही एक बार एक स्कूल में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के तहत फॉलोअप करने के लिए जाना हुआ। विज्ञान की कक्षा में सूक्ष्मदर्शी वाला अध्याय चल रहा था। अध्ययन

चित्र-1: सिर की जूँ का इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपिक फोटो।

के लिए हम सूक्ष्म चीज़ों को खोज रहे थे। एक बच्ची ने झट-से अपने सिर से जूँ निकाली और स्लाइड पर रखकर उसे देखने लगी। जूँ को उस कक्षा की शिक्षिका ने भी देखा और वे उसकी संरचना देख खुश हुईं। उन्होंने जूँ को सूक्ष्मदर्शी में पहली दफे देखा था। तभी उन्हें ध्यान आया और पलटकर पूछा, "ये किसके सिर में से निकली?" उस बच्ची ने गर्व से बताया तो, मगर जल्द ही उसे डाँट खानी पड़ी। आखिर, जूँ का होना अस्वच्छता की निशानी जो माना जाता है।

चर्चा को आगे बढ़ाते हुए मार्क स्टोनकिंग के बेटे के साथ जो सलूक हुआ, उसकी बातचीत की। बताया जाता है कि मार्क स्टोनकिंग के बेटे के स्कूल से उन्हें शिकायत भरा पत्र मिला। पत्र में लिखा था कि वे अपने बेटे के सिर से जुँओं को बिनवाएँ। स्कूली बच्चों के सिरों में तो अमूमन जुँएँ हो ही जाती हैं। मार्क स्टोनकिंग एक अनुवांशिकविद् हैं जो लिपजिंग में मैक्स प्लांक इंस्टीट्यूट फॉर इवोल्यूशनरी बायोलॉजी को नेतृत्व प्रदान करते हैं। मार्क को इन जुँओं ने आकर्षित किया और उन्होंने इनका अध्ययन कर जुँओं व वस्त्रों के बीच अन्तर्सम्बन्ध खोजकर मानव द्वारा वस्त्रों को इस्तेमाल करने के मामले में दिलचस्प राज़ खोल दिए।

यह एक दिलचस्प घटना कही जा सकती है। वैसे हमें वनस्पति व जन्तुओं (जिनमें मानव भी शामिल हैं) की उत्पत्ति और विकास की घटनाओं को समझने में जीवाश्मों ने काफी मदद की है। लेकिन मानव ने वस्त्र कब पहनना प्रारम्भ किया, इसका पता लगाने में हम जीवाश्म पर निर्भर नहीं रह सकते क्योंकि वस्त्रों के जीवाश्म

नहीं बनते। इसलिए वस्त्रों का इतिहास जानने के लिए हमें कुछ और तरीकों एवं प्रमाणों की आवश्यकता होगी। हालाँकि, कपड़े सिलने के लिए आवश्यक बुनियादी उपकरण मसलन सुई की उपस्थिति के आधार पर हम कुछ अनुमान ज़रूर लगा सकते हैं। वैसे सुई ज़रूर मिलती हैं और दिलचस्प यह भी है कि सुई के साथ जूँ के अन्तर्सम्बन्ध भी देखे जा सकते हैं।

हम सभी के लिए यह मामला काफी दिलकश था। जूँ का कपड़ों से रिश्ता और उसके आधार पर कपड़ों के इतिहास की खोज कुछ रोमांचकारी-सा लग रहा था। सवाल यह भी उठा कि आखिर जूँ क्या है।

जूँ एक कीट

जूँ एक बाहरी परजीवी है जो कीट वर्ग की सदस्य है। जूँ परिवार के सभी-के-सभी सदस्य परजीवी जीवन-यापन करते हैं। इसका शरीर सिर, वक्ष और उदर, तीन भागों में बँटा हुआ होता है। वक्ष से तीन जोड़ी टाँगें निकली होती हैं। जुँओं की लगभग पाँच हज़ार प्रजातियाँ पाई जाती हैं। ये कीट वर्ग के थाइरेप्टेरा (Phthiraptera) परिवार से ताल्लुक रखती हैं जिसके सभी सदस्य पंखहीन हैं। थाइरेप्टेरा शब्द में Phthir का अर्थ जूँ होता है और aptera का अर्थ है पंखरहित। जुँएँ गर्म रक्त वाले प्राणियों (वॉर्म ब्लडेड) को मेज़बान के रूप में चुनती हैं और बाहरी परजीवी के रूप में जीवन-यापन करती हैं। देखा गया है कि जुँएँ पेंगोलियन, चमगादड़ और मोनोट्रीम जिसमें इकिडिना, प्लेटिपस और कंगारू आते हैं, में नहीं पाई जाती हैं। जुँएँ दुनिया के हर उस कोने में मौजूद होती हैं जहाँ स्तनधारी (जिसमें मनुष्य भी शामिल हैं) और पक्षी पाए जाते हैं। ज़ाहिर है कि जुँएँ पक्षी और स्तनधारियों पर ही पाई जाती हैं।

वर्तमान में मनुष्य का शरीर तीन प्रकार की जुँओं के लिए आवास बना हुआ है - सिर की जूँ (हेड लाइस), बदन की जूँ (बॉडी लाइस) और जाँघों व बगल की जूँ (प्यूबिक लाइस)।

हमारे शरीर पर पाई जाने वाली जुँओं की एक खासियत यह है कि ये मानव के शरीर पर ही परजीवी जीवन-यापन कर सकती हैं और रक्त चूसती हैं। ये किसी और जन्तु पर नहीं रह सकतीं। दिलचस्प बात यह है कि सिर की जूँ कपड़ों पर या बदन पर नहीं रह सकतीं। दरअसल, ये मानव के शरीर की गर्मी की आदी हो चुकी हैं। इन्हें अगर मानव के शरीर से अलग कर दिया जाए तो 24 घण्टों से अधिक ज़िन्दा नहीं रह सकतीं।

जुँएँ अण्डे देती हैं। अण्डों को लीख (निट्स) कहा जाता है जो बालों या परों में चिपके होते हैं। आम तौर पर सिर वाली जूँ कान और सिर के पीछे बालों में अण्डे देती हैं। अण्डे का खोल काफी मज़बूत होता है। बदन वाली जुँएँ कपड़ों पर या शरीर के बाल जहाँ चमड़ी से निकलते हैं, वहाँ अण्डे देती

हैं। मादा जुँएँ एक दिन में 6-7 अण्डे देती हैं। एक जूँ अपने जीवनकाल में 50-100 के आसपास अण्डे देती है। इनमें कायान्तरण यानी मेटामोरफोसिस का अभाव होता है। अण्डों से निम्फ निकलते हैं जो वयस्क से मिलते-जुलते होते हैं। आम तौर पर अण्डों से बच्चे सात से ग्यारह दिनों में निकल आते हैं।

मेज़बान और परजीवी का रिश्ता

मनुष्य और जूँ का साथ चोली-दामन-सा रहा है। एक परजीवी और दूसरा मेज़बान। वैसे परजीवी के बिना मेज़बान पोषक रह सकता है मगर मेज़बान के बिना परजीवी नहीं। ऐसे परजीवी भी हैं जो अपने खास पोषक की प्रजाति के बिना ज़िन्दा नहीं रह सकते।

हेनरी यूइंग नामक वैज्ञानिक ने वॉशिंगटन के चिड़ियाघर में पाया कि अगर बन्दरों के बदन से जूँ को निकालकर उन्हें मनुष्य का रक्त चूसने दिया जाए तो वो नहीं चूसती। उसने एक स्पाइडर मंकी के शरीर से और एक बबून जैसे बन्दर से जूँ को निकालकर रक्त पीने के लिए अपनी बाँह पर छोड़ दिया। जुँओं ने रक्त नहीं पिया और कुछ देर में मर गईं। उनका मानना है कि कभी-कभी जूँ की कोई प्रजाति अपने मूल मेज़बान के अलावा अन्य प्रजाति पर भी रहना सीख लेती है। गौरतलब है कि यूइंग कृषि विभाग में कार्यरत थे मगर जुँओं पर उनके द्वारा किया गया कार्य आज भी 'नींव का पत्थर' माना जाता है।

यूइंग का मानना है कि प्रत्येक परजीवी का मुक्कदर अपने मेज़बान पर निर्भर करता है। हम यह भी जानते हैं कि अक्सर कोई परजीवी किसी नए

चित्र:2

मेज़बान के साथ बिना उसकी इजाज़त के रिश्ता बना लेता है। इससे मेज़बान एवं परजीवी के साथ-साथ होने वाले उद्विकास को लेकर अनेक अमूल्य अन्तर्दृष्टि मिलती हैं।

जूँ का अनुवांशिक विश्लेषण

जाँघ की जूँ के अनुवांशिकी विश्लेषण से पता चलता है कि प्रारम्भिक मानवों में गोरिल्ला के शरीर से लगभग 33 लाख वर्ष पहले इसका स्थानान्तरण हो चुका था। 70 से 90 लाख वर्ष पहले मानव और गोरिल्ला, दोनों के पूर्वज एक ही थे। डेविड रीड का कहना है कि जब गोरिल्ला की जूँ (*Pthirus gorillae*) और मानव की जूँ (*Pthirus pubis*) के डीएनए का विश्लेषण किया तो पाया कि इन दोनों में काफी समानताएँ हैं। इसका अर्थ यह है कि गोरिल्ला की जूँ ने मानव के शरीर को अपना ठिकाना बनाया और वहाँ पर रहने लगी। ज़ाहिर है कि यह एक नई प्रजाति में तब्दील हो गई। हो सकता है कि मानव, गोरिल्ला का शिकार करता हो और जब उसकी खाल को उधेड़ता होगा तब ये जुँएँ मानव शरीर पर पहुँच गई हों।

गोरिल्ला जूँ जब मानव के शरीर पर पहुँच गई और उसने उसे मेज़बान बना लिया, उसके बाद मानव के विकास-क्रम में शरीर से बाल गायब होना प्रारम्भ हुए। जब मानव के शरीर पर खूब बाल थे तब तो इन जुँओं का आवास समृद्ध था। मगर जैसे-जैसे बाल गायब होते गए तो इन्होंने मानव की भौंहें, पलक, बगल एवं जाँघ वाले क्षेत्रों को रहने का ठिकाना बना लिया। डेविड रीड के अनुसार गोरिल्ला के शरीर की जूँ और मनुष्य की जाँघ की जूँ का बिछोह 33 लाख साल पहले हुआ होगा।

जूँ के ज़रिए वस्त्र का इतिहास

मानव द्वारा इज़ाद किए वस्त्रों के इतिहास की कहानी जूँ बयाँ करती है। स्टोनकिंग को पता चला कि बदन की जूँ अपना आहार बदन से लेती है मगर रहती तो कपड़ों पर है। यही बारीक-सी बात इशारा करती है कि हो-न-हो जब तक कपड़ों का इस्तेमाल मानव ने नहीं किया था तब तक शायद इस जूँ की प्रजाति का कोई अस्तित्व ही नहीं रहा हो।

अगर कपड़े इसका कुदरती आवास हैं तो कपड़े के आविष्कार और इस्तेमाल के बाद ही बदन की जूँ की उत्पत्ति हुई होगी। तो फिर यह जूँ कहाँ से आई होगी? इसका कोई-न-कोई पूर्वज रहा होगा। यहाँ शिक्षक साथी रुके और सोचते रहे। वाकई ये एक दिलचस्प मामला है। क्या बच्चे इस तरह से सोच सकते हैं? आपस में चर्चा करते हुए निष्कर्ष निकला कि उन्हें अगर सोचने के पर्याप्त अवसर दिए जाएँ तो यह सम्भव बनता है।

चर्चा की गई कि इसे लेकर पूर्व में एक प्रयोग डेविड रीड और उनके साथी द्वारा किया गया था कि अगर सिर की जुँओं को सिर पर न छोड़ते

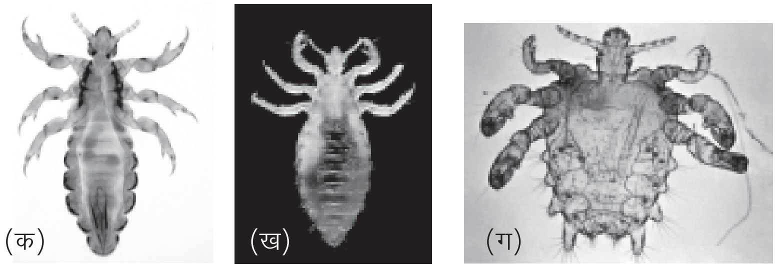

आभार: विकीमीडिया कॉमन्स

चित्र-3: मनुष्य पर परजीवी जूँएँ। (क) सिर की जूँ, (ख) बदन की जूँ, (ग) जंघन जूँ

हुए, उन्हें केवल बदन से रक्त चूसने का मौका दिया जाए तो उनमें से कुछ तो मर जाती हैं और कुछ ज़िन्दा बची रहती हैं। स्टोनकिंग ने अपनी परिकल्पना बनाई कि सिर की जूँ, बदन की जूँ की पूर्वज रही होगी। उनका स्थानान्तरण तब हुआ होगा जब उन्हें आवास के रूप में मानव के सिले हुए कपड़े उपलब्ध हुए होंगे। ऐसा कब सम्भव हुआ होगा? सबसे अधिक सम्भावना है जब मानव के पूर्वजों ने नियमित रूप से कपड़े पहनने शुरू किए होंगे। (*संदर्भ* के पिछले अंक यानी अंक 115 में प्रकाशित लेख में जुँओं की विविध प्रजातियों, उनके डीएनए के वैविध्य पर विस्तार से चर्चा की गई थी।)

जुँओं के अध्ययन के ज़रिए भी यही पता लगाने की कोशिश की गई। जितनी अधिक विभिन्नता उतना ही अधिक पुराना! इसका अर्थ यह है कि बदन की जुँओं और मनुष्यों की उत्पत्ति अफ्रीका में हुई थी। बेशक तब मानव के शरीर पर खूब बाल थे। अफ्रीका से प्राप्त मानव की जूँ और अफ्रीका के अलावा क्षेत्रों से प्राप्त जुँओं के डीएनए में विभिन्नता की तुलना की। इस तुलना में यह पाया गया कि अफ्रीकी जुँओं के डीएनए में अधिक विभिन्नता थी। इससे यह भी पता चलता है कि अफ्रीका से ही मनुष्य दुनिया के अन्य हिस्सों में पहुँचे हैं।

चूँकि सिर की जुँओं में ज़्यादा विभिन्नता पाई जाती है तो इसका अर्थ यह है कि सिर की जुँओं की उत्पत्ति बदन की जुँओं की तुलना में पहले हुई। अफ्रीका में पाई जाने वाली जुँओं में अधिक विभिन्नता और सिर की जुँओं की तुलना में शरीर की जुँओं की देर से उत्पत्ति, यह बयाँ करती है कि जुँओं और मानव का विकास साथ-साथ हुआ।

बदन वाली जुँओं के डीएनए से पता चलता है कि इनमें परिवर्तन कम

हुए हैं बनिस्बत सिर वाली जूँ के। ऐसा आकलन है कि बदन वाली जूँ की उत्पत्ति 42,000 से 72,000 वर्ष के आसपास ही हुई होगी। इसका अर्थ यह भी है कि इसी दौरान सिलाई वाले कपड़ों का इस्तेमाल शुरू हुआ होगा। यह समय-सीमा इस बात से भी पुख्ता हुई है कि एक सिलाई वाली सुई का लगभग 40,000 साल पुराना नमूना मिला है। यह आधुनिक मानव के निवास स्थानों के आसपास ही पाई गई है। नीएंडरथल के ठिकानों पर ऐसी कोई सूई नहीं मिली है। यह कहा जाता है कि निएंडरथल मानव जिनका आवास यूरोप में था, इसलिए नहीं जी पाए क्योंकि कड़ाके की ठण्ड वे बर्दाश्त नहीं कर सके। एक कारण यह हो सकता है कि उनके पास कपड़े नहीं थे। शायद कपड़े होते तो वे ठण्ड से पार पा जाते।

बहरहाल, कपड़े को लेकर इस चर्चा में हमने यह समझने की कोशिश की कि हम कैसे दो चीज़ों के बीच अन्तर्सम्बन्ध बिठाते हैं। और वो भी ऐसी जिनके बारे में हम सामान्यतया सोच भी नहीं पाते। दरअसल, इस सत्र को शिक्षकों के साथ करने का मूल मकसद यही था कि जब कपड़ों की बात होती है तो हम इसमें और पहलुओं को कैसे शामिल कर सकते हैं। एक पहलू कपड़ों के इतिहास का है जो मैंने शिक्षकों के साथ एक सत्र के रूप में किया, जो हमें एक नज़रिया देता है कि वैज्ञानिक कैसे सोचते हैं।

कालू राम शर्मा: अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, खरगोन में कार्यरत। स्कूली शिक्षा पर निरन्तर लेखन। फोटोग्राफी में दिलचस्पी।